खण्ड – 1 : हिन्दी भाषा का विकास : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

इकाई – 1 : प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ : वैदिक एवं लौकिक संस्कृत

इकाई की रूपरेखा

1.1.0. उद्देश्य कथन
1.1.1. प्रस्तावना
1.1.2. विषय-प्रवेश
    1.1.2.1. भाषा की परिभाषा
    1.1.2.2. भाषा के तत्त्व
    1.1.2.3. भाषा के अंग या अवयव
1.1.3. हिन्दी भाषा का विकास : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
1.1.4. प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ
    1.1.4.1. वैदिक संस्कृत
    1.1.4.2. लौकिक संस्कृत
    1.1.4.3. वैदिक और लौकिक संस्कृत में अन्तर तथा उनकी विशेषताएँ
1.1.5. वैदिक संस्कृत
    1.1.5.1. वैदिक संस्कृत की ध्वनियाँ
    1.1.5.2. वैदिक संस्कृत की प्रमुख विशेषताएँ
1.1.6. लौकिक संस्कृत या संस्कृत
    1.1.6.1. संस्कृत भाषा की ध्वनियाँ
    1.1.6.2. लौकिक संस्कृत की विशेषताएँ

1.1.0. उद्देश्य कथन

इस अध्याय में हम हिन्दी भाषा के विकास के साथ उसकी लिपि नागरी अथवा देवनागरी के विकास को पढ़ेंगे। हम जिस भाषा को बोलते आए हैं उसमें अनेक परम्पराओं, संस्कृति और सभ्यता का समागम है। हिन्दी भाषा के विकास के साथ हम विभिन्न काल में उसकी प्रकृति और प्रगति के रूप में समझने का प्रयास करेंगे। भाषा शनैः शनैः अपना रूप कैसे परिवर्तित करती है, कैसे वह नयी चीजों को आत्मसात करती है और सरलता के आग्रह से तथा व्यवहार न किए जाने से रूप, रचना और ध्वन्यात्मक रूप में वह कैसे परिवर्तित होती चलती है, इसे हम समझने का प्रयास करेंगे। प्रस्तुत पाठ के अन्तर्गत हम हिन्दी भाषा के विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की चर्चा करते हुए प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं की विशिष्टता को समझेंगे एवं साथ ही वैदिक एवं लौकिक संस्कृत की समता-भेदकता को समझ सकेंगे। हिन्दी भाषा के विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझने में इस अध्याय से आपके भाषाई चिन्तन को नया आयाम मिलेगा साथ ही राष्ट्र और भाषा के सामरस्य को समझ सकने में आप सफल हो सकेंगे।

1.1.1. प्रस्तावना

मानव-जीवन में भाषा का अत्यधिक महत्त्व है क्योंकि वह भावों और विचारों की अभिव्यक्ति का मुख्य साधन है। मानव एक सामाजिक प्राणी है। इसलिए उसे निरन्तर अपने भावों और विचारों को दूसरे पर अभिव्यक्त करना पड़ता है एवं दूसरों के भावों और विचारों को ग्रहण करना पड़ता है। ऐसा वह भाषा के माध्यम से ही कर सकता है। निस्सन्देह कुछ भाव एवं विचार विभिन्न संकेतों द्वारा भी ग्रहण किये और कराये जाते हैं, परन्तु उससे सामाजिक जीवन का समस्त कार्य व्यवहार नहीं चल सकता है। इसलिए मानव जीवन में भाषा की सदैव अपेक्षा रहती है और उसका स्थान महत्त्वपूर्ण है।

'भाषा' शब्द संस्कृत का तत्सम शब्द है और इसकी व्युत्पत्ति व्यक्त वाण्यर्थ 'भाष' धातु से हुई है। भाषण शब्द इसी धातु से बनता है, परन्तु भाषण और भाषा के अर्थों में अन्तर है। भाषण व्यक्तिगत होता है और इसका सम्बन्ध व्यक्ति-विशेष से रहता है, जबकि भाषा सामाजिक वस्तु है और इसका सम्बन्ध सम्पूर्ण समाज से रहता है। इंगलिश में भाषा के लिए 'लेंग्वेज' (Lanuage) शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिसका सम्बन्ध लैटिन के शब्द 'लिंग्वा' (Lingua) चिह्न से एवं फ्रांसीसी शब्द 'लांग' (Longue-Language) से है। इस प्रकार लैंग्वेज शब्द भी मानवीय बोली (Human Speech) का ही वाचक है। कुछ भाषा वैज्ञानिकों ने 'भाषा' शब्द का प्रयोग सभी प्राणियों द्वारा भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले सभी साधनों के लिए किया है। परन्तु वह असंगत है। 'भाषा' शब्द का प्रयोग मानव की व्यक्त वाणी के लिए ही संगत है। पशु-पक्षियों द्वारा उच्चरित ध्वनियों के लिए भाषा का प्रयोग लाक्षणिक है। हिन्दी, पंजाबी आदि में इसके लिए 'बोली' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जैसे कुत्ते की बोली, बिल्ली की बोली, कौवे की बोली आदि। यद्यपि यहाँ भी उसका प्रयोग लाक्षणिक ही है और उसे मनुष्य की बोली की समानता नहीं दी जा सकती।

लोक व्यवहार में 'भाषा' शब्द का प्रयोग बड़े व्यापक रूप में होता है। समान्यतः मनुष्य द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली सभी सभ्य एवं असभ्य बोलयों को, प्रान्तीय एवं स्थानीय बोलियों को, शुद्ध परिनिष्ठित भाषा को एवं राष्ट्रभाषा को भाषा ही कहा जाता है। जैसे भगवान् राम की भाषा, श्रीकृष्ण की भाषा, गाँधीजी की भाषा, नेहरूजी की भाषा आदि। किसी नगर एवं ग्राम में रहने वाली विभिन्न जातियों की बोलियों को भी भाषा कह दिया जाता है। जैसे, ब्राह्मणों की भाषा, ठाकुरों की भाषा, बनियों की भाषा, धोबियों की भाषा आदि। इसी प्रकार विभिन्न कार्य करने वालों की बोली को भी भाषा कहा जाता है। जैसे, अध्यापकों की भाषा, सुनारों की भाषा, लुहारों की भाषा, जाटों की भाषा, नाईयों की भाषा आदि। एक स्थान पर रहने वाले विभिन्न धर्मावलम्बियों की बोल-चाल में व्यवहृत बोली को भी भाषा कहते हैं। जैसे, हिन्दुओं की भाषा, मुसलमानों की भाषा, ईसाइयों की भाषा, सिक्खों की भाषा आदि। इसी प्रकार वीरों की भाषा, कायरों की भाषा, सन्तों की भाषा, कवियों की भाषा, मूर्खों की भाषा, तलवार की भाषा आदि। इसके अतिरिक्त योगियों और सन्तों की रहस्यमयी भाषा, ठगों की कृत्रिम भाषा, प्रेमियों की रागमयी भाषा आदि का भी व्यवहार देखा जा सकता है। इस प्रकार लोक व्यवहार में 'भाषा' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में उपलब्ध होता है।

1.1.2. विषय-प्रवेश

1.1.2.1. भाषा की परिभाषा

अब प्रश्न यह है कि भाषा का लक्षण क्या है ? भाषा की परिभाषा क्या हो सकती है ? अथवा भाषा किसे कहते हैं ? भाषा का लक्षण भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने विविध ढंग से प्रस्तुत किया है । भारत के सुप्रसिद्ध वैयाकरण महर्षि पतंजलि ने अपने महाभाष्य में भाषा का लक्षण करते हुए लिखा है – "जो वाणी वर्णों में व्यक्त करती है । उसे भाषा कहते हैं ।" सुप्रसिद्ध वैयाकरण कामता प्रसाद गुरु ने लिखा है कि"भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली-भाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार आप स्पष्टतया समझ सकता है ।" डॉ॰ श्यामसुन्दरदास ने लिखा है – "मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और गति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों का जो व्यवहार होता है उसे भाषा कहते हैं ।" डॉ॰ बाबूराम सक्सेना का विचार है कि "जिन ध्वनि चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनियम करता है, उनको समष्टि रूप से भाषा कहते है ।" डॉ॰ भोलानाथ तिवारी का मत है "भाषा निश्चित प्रयत्न के फलस्वरूप मनुष्य के मुख से निस्सृत व सार्थक ध्वनि-समष्टि है, जिसका विश्लेषण और अध्ययन हो सके ।" आचार्य देवन्द्रनाथ शर्मा का विचार है कि "पूर्ण अभिव्यक्ति भाषा है अथवा जिसकी सहायता से मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय या सहयोग करते हैं, उस यादृच्छिक, रूढ़ ध्वनि-संकेत की प्रणाली को भाषा कहते हैं ।"

पाश्चात्य विद्वानों ने भी भाषा की विविध रूपों में व्याख्या की है । सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक मैक्समूलर ने भाषा की परिभाषा करते हुए लिखा है कि "भाषा और कुछ नहीं है, केवल मानव की चतुर बुद्धि द्वारा आविष्कृत एक ऐसा उपाय है जिसकी मदद से हम अपने विचार सरलता और तत्परता से दूसरों पर प्रकट कर सकते हैं और जो चाहते हैं कि इसकी व्याख्या प्रकृति की उपज के रूप में नहीं, बल्कि मनुष्य-कृत पदार्थ के रूप में करना उचित है ।" इटली के सुप्रसिद्ध साहित्य-शास्त्री क्रोचे का मत है – "भाषा उस स्पष्ट सीमित तथा सुसंगठित ध्वनि को कहते है, जो अभिव्यंजना के लिये नियुक्त की जाती है ।" हेनरी स्वीट का विचार है – "जिन व्यक्त ध्वनियों द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति होती है उन्हें भाषा कहते है ।" ए.एच. गार्डिनर का कथन है – "विचारों की अभिव्यक्ति के लिए जिन व्यक्त एवं स्पष्ट ध्वनि-संकेतों का व्यवहार किया जाता है, उन्हें भाषा कहते हैं ।" ऐसे ही ब्रिटेन के विश्वकोष में भाषा की परिभाषा इस प्रकार की गयी है – "भाषा व्यक्त ध्वनि-चिह्नों की उस पद्धति को कहते हैं जिसके माध्यम से प्रत्येक समाज के दल एवं संस्कृति के मानने वाले सदस्य पारस्परिक विचार-विनिमय किया करते हैं ।"

अतः भाषा की सर्वमान्य परिभाषा यह हो सकती है कि "भाषा मुख से उच्चरित इस परम्परागत, सार्थक एवं व्यक्त ध्वनि-संकेतों की समष्टि को कहते हैं, जिसकी सहायता से मानव आपस में विचारों एवं भावों का आदान-प्रदान करते हैं तथा जिसका वे स्वेच्छानुसार अपने दैनिक जीवन में प्रयोग करते हैं ।"

1.1.2.2. भाषा के तत्त्व

भाषा की संरचना या संघटना में विभिन्न तत्त्वों का योगदान रहता है। इन तत्त्वों में मुख्य हैं – ध्वनितत्त्व, रूपतत्त्व, अर्थतत्त्व तथा शब्दतत्त्व। ध्वनि भाषा का मुख्य तत्त्व है। वही भाषा का मूलाधार होती है। ध्वनि आशय है – स्वर, व्यंजन आदि स्वर (ध्वनियाँ)। भाषा में स्वरों और व्यंजनों के साथ मात्रा, सुर और बलाघात जैसे तत्त्वों का भी योगदान होता है। भाषा के निर्माण में रूप तत्त्व का भी प्रबल योगदान रहता है। डॉ॰ सरयूप्रसाद अग्रवाल कहते हैं कि – "ध्वनियों को ही लघुतम अर्थ पूर्ण इकाईयों के रूप में प्रयोग करने पर हम रूप की संज्ञा देते हैं। वास्तव में 'रूप' ही भाषा की लघुतम अर्थपूर्ण इकाई होते हैं, जिनमें एक अथवा अनेक ध्वनियों का प्रयोग किया जाता है।" भाषा के इस महत्त्वपूर्ण तत्त्व को भाषाविदों ने मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा है – शब्द तथा पद। पाणिनि ने शब्द के जहाँ दो भेद – सुबन्त तथा तिङन्त किये हैं, तो आचार्य यास्क ने निरुक्त में चार भेद – नाम, आख्यात, उपसर्ग तथा निपात। स्थूल रूप में इन्हें ही अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व भी कहा जाता है।

1.1.2.3. भाषा के अंग या अवयव

भाषा के अंग और तत्त्व, क्या ये दो भिन्न-भिन्न अस्तित्व के बोधक हैं या एक ही हैं। कुछ भाषाविदों का मानना है कि यदि हाथ, पैर, गला, कान, नाक, आँख आदि शरीर के अंग है, तो इन्हें जीवन्त और पुष्ट बनाये रखने के लिए उचित खुराक पहुँचाने वाले मांस-मज्जा, खून आदि 'तत्त्व' की श्रेणी में आयेंगे। बहरहाल इनमें इनमें कोई स्थूल अन्तर नहीं है। विद्वानों ने वाक्य, रूप, ध्वनि (स्वन), शब्द तथा अर्थ को भाषा का महत्त्वपूर्ण अंग माना है।

1.1.3. हिन्दी भाषा का विकास : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत ईरान शाखा के कुछ आर्य भारत आये और उनके कारण भारत में भारतीय आर्यभाषा बोली जाने लगी। विद्वानों का विचार है कि आर्य भारत में कई दलों में आये। भाषा वैज्ञानिक प्रमाणों के आधार पर ग्रियर्सन आदि का कहना है कि कम से कम दो बार तो आर्य अवश्य आये। सभी विद्वान् इस बात से सहमत नहीं है। आर्यों के आने के काल के सम्बन्ध में भी विवाद है। अधिकांश लोग यह मानते है कि मोटे रूप से यह माना जा सकता है कि 1500 ई.पू. के लगभग आर्य आ चुके थे। इसका आशय यह हुआ कि भारतीय आर्यभाषा का इतिहास 1500 ई. पू. से 20वीं सदी तक फैला हुआ है। इस साढ़े तीन हजार वर्षों के कालखण्ड को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है –

(i)	प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल	:	1500 ई.पू. से 500 ई.पू. तक
(ii)	मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल	:	500 ई.पू. से 1000 ई. तक
(iii)	आधुनिक भारतीय आर्यभाषा काल	:	1000 ई. से अब तक

1.1.4. प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ

भाषाविद् डॉ॰ अवधेश्वर अरुण के विचार से अब यह निर्विवाद रूप से मान लिया गया है कि भारत में आर्यों का आगमन लगभग 1000 वर्षों तक शनैः शनैः होता रहा। ऐसी परिस्थिति में कालगत व्यवधान के कारण निश्चय ही इन सब आर्यों को एक भाषाभाषी मानना असंगत है। वैदिक साहित्य में प्राप्त भाषागत विविधता से यह स्पष्ट है कि थोड़ी-बहुत समानता के बावजूद आर्य भिन्न भाषाभाषी थे। टी. बर्नो ने अपनी पुस्तक 'History of Sanskrit Language' में इस तथ्य पर प्रकाश डाला है कि प्राचीन आर्यभाषा के पयार्यवाची रूप में संस्कृत का प्रयोग समीचीन नहीं हैं, क्योंकि उन बोलियों, जिन पर संस्कृत आधारित थी, के अतिरिक्त भी आर्यो की कई और बोलियाँ थीं इसलिए भारतीय आर्यभाषा शब्द का प्रयोग आदि की समस्त भाषाओं के लिये किया जाना चाहिए। संस्कृत और प्राकृत आदि ऐसी ही भाषाएँ हैं।

सच तो यह है कि इस युग की भाषा को सामान्यतः संस्कृत कहा जाता है। अब यह एक अलग प्रश्न है कि संस्कृत जनभाषा थी या कृत्रिम रूप से संघटित अपभाषा। इस पर विद्वान् एक मत व्यक्त नहीं करते। डॉ॰ वासुदेव शरण अग्रवाल, डॉ॰ प्रभात चन्द्र चक्रवर्ती तथा डॉ॰ ए.बी. कीथ आदि देशी-विदेशी विद्वान् संस्कृत को उच्च श्रेणी के शिक्षित समाज की भाषा मानते हैं। पर वहीं डॉ॰ शमशेर सिंह नरूला का कहना है कि "वास्तव में ये व्याकरण और ध्वनि के इतने जटिल नियमों द्वारा जकड़ी हुई कोई भाषा बोलचाल की भाषा हो ही नहीं सकती और न ही वह किसी की मातृभाषा हो सकती है, बेशक वह कितना ही विद्वान् क्यों न हो।" बहरहाल, यह संस्कृत काल में अपने दो रूपों में दिखाई देती है – (i) वैदिक तथा (ii) लौकिक। वैदिक भाषा का एक नाम छांदस भी है। 'कौषीतकि ब्राह्मण' के अनुसार उस काल में यही परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा थी।

तस्मादु दीच्चां प्रसाततरा वागुद्यते उदञ् ड एवयान्ति वाचां
शिक्षितुम् यो वा तत आगच्छति, तस्य वा शुश्रूषन्त इति॥

इसी काल में एक आसुरी भाषा का भी उल्लेख मिलता है, जो अपने बोलिगत वैविध्य के कारण खास चर्चित थी।

संस्कृत का महत्त्व निर्विवाद है। सरदार के.एम. पणिक्कर का कहना है कि, "संस्कृत विश्व की संस्कृति और सभ्यता की भाषा है जो भारत की सीमाओं के पर दू-दूर तक फैली हुई थी।" डॉ॰ आर.के. मुकर्जी की स्थापना है, "ब्राह्मण काल एवं उसके पश्चात् भी निःसन्देह सामान्य जनता के धार्मिक कृत्यों, पारिवारिक संस्कारों तथा शिक्षा एवं विज्ञान की भाषा थी।" इसी तरह डॉ॰ राम सकल पाण्डेय का यह उद्धरण भी विशेष महत्त्व का है कि, "जर्मन, फ्रेंच, लैटिन जैसी भाषाओं की शब्दावली पर संस्कृत का स्पष्ट प्रभाव है। यूरोपीय संस्कृति के मूल तत्त्वों को समझने के लिये भी संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है। यूरोपीय संस्कृति उसी भारोपीय संस्कृति की मूल शाखा है, जिनका चित्रण मूलतः संस्कृत में सुरक्षित है।" तो आइए, विपुल साहित्य को समाहित करने वाली विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में से एक संस्कृत के दोनों रूपों को संक्षेप में देख लिया जाय –

1.1.4.1. वैदिक संस्कृत

यास्क और पाणिनि से पूर्व की भाषा को वैदिक भाषा, वैदिक संस्कृत या प्राचीन संस्कृत कहा जाता है। साफ शब्दों में यह वैदिक वाङ्मय की महत्त्वपूर्ण भाषा है। इस काल के साहित्य को विद्वानों ने मुख्य रूप से तीन भागों में बाँटा है – (i) संहिता, (ii) ब्राह्मण, तथा (iii) उपनिषद्। संहिता के अन्तर्गत एक ओर तदक संहिता (ऋग्वेद), यजुःसंहिता (यजुर्वेद), साम संहिता (सामवेद) तथा अथर्व संहिता (अथर्ववेद) की गणना की जाती है तो वहीं दूसरी ओर ब्राह्मण भाग में कर्मकाण्डों की व्याख्या है। इसके अतिरिक्त वैदिक ऋषियों के आध्यात्मिक चिन्तन से पूर्ण उपनिषदों में ज्ञान काण्ड की चर्चा है।

1.1.4.2. लौकिक संस्कृत

वैदिक संस्कृत की तुलना में इसे लौकिक संस्कृत कहा जाता है। सुप्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि ने प्रचलित जनभाषा एवं वैदिक साहित्य भाषा – दोनों को सामयिक प्रयोगों के आधार पर व्याकरण स्थिर करते हुए उसका संस्कार किया। यही भाषा लोक प्रचलित भाषा कहलायी। 'लौकिक संस्कृत' के नामकरण के सम्बन्ध में पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिक विन्टर निट्ज का विचार है कि पाणिनि के नियमों से बद्ध होने के कारण ही यह लौकिक संस्कृत कहलायी – "What we call classical Sanskrit means panini's Sanskrit, that is the Sanskrit which according to the rules of Paninis is alone correct."

1.1.4.3. वैदिक और लौकिक संस्कृत में अन्तर तथा उनकी विशेषताएँ

वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत के बीच की कुछ भेदक प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं –

(i) वैदिक संस्कृत की तुलना में लौकिक संस्कृत में स्वरों की संख्या कम है। 'ऌ' स्वर का पूर्णतः लोप हो गया है।

(ii) वैदिक एवं लौकिक संस्कृत में शब्दभेद की दृष्टि का अन्तर है, दोनों की शब्दावली में पर्याप्त परिवर्तन हुआ। यथा – वैदिक संस्कृत में ईम, अवस्तु, डर्गिया, सीगा, उक्थ आदि शब्दों का आज की लौकिक संस्कृत में प्रयोग नहीं मिलता।

(iii) वैदिक संस्कृत में उपसर्ग धातुओं से अलग है, पर लौकिक संस्कृत में धातु के साथ ही सम्बद्ध है।

(iv) वैदिक भाषा स्वराघात प्रधान भी, जबकि लौकिक संस्कृत बलाघात प्रधान भाषा हो गयी।

(v) वैदिक संस्कृत में सप्तमी एक वचन अनेक स्थानों पर लुप्त हो जाता है, जैसे – परमेव्योमनः, पर लौकिक संस्कृत में यह लुप्त नहीं होता। वहाँ पर 'व्योम्नि' या 'योमनि' रूप आज भी सुरक्षित है।

(vi) सन्धि कार्य की दृष्टि से वैदिक संस्कृत में अस्त-व्यस्तता है जबकि इसके ठीक उलट लौकिक संस्कृत में सन्धि सम्बन्धी नियम जटिल और अनिवार्य हैं।

(vii) ए, ओ वैदिक भाषा में संयुक्त स्वर थे, पर लौकिक संस्कृत में मूल स्वर हो गए। वैदिक भाषा में समास चार प्रकार के मिलते हैं, यथा – (i) तत्पुरुष, (ii) कर्मधारय, (iii) बहुव्रीहि तथा (iv) द्वन्द्व। किन्तु लौकिक संस्कृत में इनके अतिरिक्त दो और भी समास हैं – (i) द्विगु और (ii) अव्ययीभाव।

(viii) वैदिक भाषा में 'र' का प्रयोग बहुतायत मिलता है, जबकि लौकिक संस्कृत में 'ल' का प्रयोग मिलता है। यथा – रम, रोम, रोहित क्रमशः लौकिक में लम, लोम, लोहित रूप में मिलते हैं।

(ix) वैदिक भाषा में कुछ शब्द लौकिक संस्कृत में भिन्न अर्थों के बोधक हो गए हैं, यथा – वैदिक भाषा में 'अराति' शब्द का अर्थ शत्रु तथा कंजूस दोनों था, पर लौकिक में आज वह महज 'शत्रु' शब्द का द्योतक रह गया है।

(x) वैदिक संस्कृत में व्यंजनांत शब्दों का प्रयोग प्रायः नहीं मिलता है जबकि लौकिक संस्कृत में मिलता है।

कुल मिलाकर कह सकते हैं कि वैदिक एवं लौकिक संस्कृत में विभिन्न प्रकार के नैकट्य के बावजूद दोनों में व्याकरण, रूप-रचना और ध्वनि सम्बन्धी कुछ बुनियादी अन्तर भी हैं।

1.1.5. वैदिक संस्कृत

1.1.5.1. वैदिक संस्कृत की ध्वनियाँ

मूल भारोपीय ध्वनियों से वैदिक संस्कृत की ध्वनियों की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ तक आते-आते ध्वनियों में पर्याप्त परिवर्तन हो गया था। व्यंजनों में च वर्ग और ट वर्ग – दो नये वर्ग आ गए थे। ष, श आदि कुछ फुटकर ध्वनियाँ भी उग आयी थीं। दूसरी ओर तीन क वर्गों के स्थान पर केवल एक रह गया था। स्वरों और स्वनत या अर्द्धस्वरों में बहुत परिवर्तन हो गया था।

ध्वनियों की सूची इस प्रकार है –

मूल स्वर	–	अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ॡ
संयुक्त स्वर	–	ए (अइ), ओ (अउ), ए (आइ), औ (आउ)
कण्ठ्य	–	क, ख, ग, घ, ङ
तालव्य	–	च, छ, ज, झ, ञ
मूर्द्धन्य	–	ट, ठ, ड, ढ, ळ, ळह, ण
दन्त्य	–	त, थ, द, ध, न
ओष्ठ्य	–	प, फ, ब, भ, म
दन्तोष्ठ्य	–	व
अन्तस्थ	–	य, र, ल, व
अनुनासिक	–	अनुस्वार (:-)
संघर्षी	–	श, ष, स, ह, un (जिह्वामूलीय) un (उपध्मानीय)

1.1.5.2. वैदिक संस्कृत की प्रमुख विशेषताएँ

वैदिक संस्कृत की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(i) वैदिक भाषा की पद रचना श्लिष्ट योगात्मक थी।

(ii) पद रचना में विविधता और अनेकरूपता थी। यह विविधता लौकिक संस्कृत और अत्यन्त कम हो गई। अपवाद नियम भी कम हो गए।

(iii) धातु रूप में लोट् लकार का प्रयोग होता था जो कि लौकिक संस्कृत में नहींरहा।

(iv) धातु रूपों में ये विशेषताएँ भी थीं – i. विकरण-व्यत्यय, शप् आदि के स्थान पर दूसरे गण का विकरण हो जाता था, ii. पद-व्यय, परस्मैपद, आत्मनेपद में परिवर्तन, iii. लङ् आदि में अट् (अ) का अभाव, iv. मः> मासि, v. द्वित्व का अभाव, ददाति के स्थान पर दाति vi. अन्तिम स्वर को दीर्घ चक > चक्रा, विघ्न > विघ्ना।

(v) कृत प्रत्ययों में तुम् के अर्थ में से, असे, अध्यै आदि 15 प्रत्यय थे। संस्कृत में 'तुम' ही शेष रहा है।

(vi) वेद में संगीतात्मक स्वर (Accent) की मुख्यता थी। संस्कृत में बलाघात्मक स्वर हो गया।

(vii) वेद में उपसर्ग धातु से पृथक् भी प्रयुक्त होते थे, संस्कृत में नहीं। जैसे अभिगृहीहि का अभि ..... गृणीहि। 'अभि यज्ञं गृणीहि न।' (ऋग्वेद 1-15-3)

(viii) वैदिक संस्कृत में लौकिक संस्कृत के समान तीन लिंग और तीन वचनथे, पर लिंग और वचन में परिवर्तन भी हो था। 'मधुनः' को 'मधोः', 'मित्राः' को 'मित्रः' आदि।

(ix) वैदिक संस्कृत में ह्रस्व तथा दीर्घ के साथ प्लुत का भी प्रयोग प्रचलित था । रायोऽवनिः । वर्ष्याऽअह। अध्योऽवृको।

(x) दो स्वरों के मध्य में उ > क् और ढ > क्ह हो जाता था। जैसे – ईडे > इके, मिदुषे > मीळ, हुषे। संस्कृत में ये दोनों ध्वनियाँ नहीं हैं। हिन्दी में क, कह के विकसित रूप ड, ढ़ है।

(xi) वैदिक संस्कृत में 'ऌ' स्वर का प्रयोग प्रचलित था।

(xii) सन्धि नियमों में पर्याप्त शिथिलता थी। प्रगृह्य वाले स्थल पर भी सन्धि मिलती है। रोदसी + इमे रोदसीमे। पूर्वरूप आदि सन्धियों का अभाव भी मिलता है। उपप्रयन्तो अध्यवरम्, नो अव्यात् शतधारो अयम्।

(xiii) वैदिक संस्कृत में मध्य स्वरागम (Anaplyxis) य स्वरभक्ति के अनेक उदाहरण मिलते हैं। जैसे – पृथ्वी > पृथिवी, स्वर्ण > सुवर्ण, दर्शत > दरशत।

लौकिक संस्कृत में शब्द रूपों, धातु रूपों एवं प्रत्ययों की विविधता कम हो गयी और काल पुरुष, वचन, लिंग आदि के ऐच्छिक परिवर्तन प्रायः समाप्त हो गए।

1.1.6. लौकिक संस्कृत या संस्कृत

लौकिक संस्कृत के अन्य नाम संस्कृत, क्लैसिकल संस्कृत तथा देशभाषा भी है। वैदिक संस्कृत में भाषा के तीन स्वर मिलते हैं – उत्तरी, मध्यदेशीय तथा पूर्वी। लौकिक संस्कृत का आधार उत्तरी रूप (बोलचाल को) ही माना जाता है। साहित्य में प्रयुक्त भाषा के रूप में इसका आरम्भ 8वीं सदी ई.पू. साहित्यिक या क्लैसिकल संस्कृत की आधारभाषा का बोलचाल में प्रयोग लगभग 5वीं सदी ई.पू. या कुछ क्षेत्रों में उसके बाद तक होता रहा, किन्तु तब तक उत्तरी भारत के आर्यभाषाभाषियों में कई भौगोलिक बोलियाँ जन्म ले चुकी थी, जो आगे चलकर विभिन्न प्राकृतों, अपभ्रंशों एवं आधुनिक आर्यभाषाओं के जन्म का कारण बनीं। पाणिनी ने 5वीं सदी ई.पू. के आस-पास ही इस भाषा को व्याकरणबद्ध किया।

बोलचाल की भाषा साहित्यिक भाषा के विरूद्ध परम्परागत कम और विकासोन्मुख अधिक होती है। संस्कृत के बोलचाल की भाषा के बहुत से प्रमाण पाणिनी के सूत्रों मेंहै।

लौकिक संस्कृत का सबसे प्राचीन एव आदिकाव्य वाल्मीकि रामायण 500 ई.पू. का है। महाभारत, पुराण, काव्य-नाटक आदि ग्रन्थ 500 ई.पू. से आज तक अविच्छिन्न रूप से अपना गौरव स्थापित किये हुए हैं। यास्क, कात्यायन, पतंजलि आदि के लेखों से सिद्ध है कि ईसा पूर्व तक संस्कृत लोक व्यवहार की भाषाथी।

संस्कृत साहित्य आर्य-जाति का प्राण है। संस्कृत में ही समस्त प्राचीन ज्ञान, विज्ञान, कला, पुराण, काव्य नाटक आदि है। संस्कृत ने न केवल भरतीय भाषाओं को अनुप्राणित किया है, अपितु विश्व-भाषाओं, मुख्यतया भारोपीय भाषाओं को भी प्रभावित किया है।

1.1.6.1. संस्कृत भाषा की ध्वनियाँ

मूलस्वर	–	अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ए ओ	= 11
संयुक्त स्वर	–	ऐ (अइ), औ (अनु)	= 2
व्यंजन	–		
स्पर्श	–	क् ख् ग् घ् ङ् (कण्ठ्य)	
		च् छ् ज् झ् ञ् (तालव्य)	
		ट् ठ् ड् ढ् ण् (मूर्धन्य)	
		त् थ् द् ध् न् (दन्त्य)	
		प् फ् ब् भ् म् (ओष्ठ्य)	= 25
अन्तस्थ	–	य् र् ल् व्	= 4
अघोष संघर्षी	–	श् ष् स्	= 3
घोष उष्म	–	ह्	= 1
शुद्ध अनुनासिक	–	(अनुस्वार)	= 1
अघोष उष्म	–	(विसर्ग)	= 1
			कुल 48

वैदिक संस्कृत में 52 ध्वनियाँ थी जिनमें से संस्कृत में 48 ध्वनियाँ रह गई हैं। वैदिक संस्कृत की 4 ध्वनियाँ लुप्त हो गई – ळ, ळह, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय।

1.1.6.2. लौकिक संस्कृत की विशेषताएँ

वैदिक संस्कृत का ही विकसित रूप लौकिक संस्कृत है। वैदिक संस्कृत में जो विविधता और अनेकरूपता पायी जाती थी, वह संस्कृत में न्यून हो गई। पाणिनी के व्याकरण का प्रभाव बहुत बढ़ गया। फलस्वरूप पाणिनी व्याकरण से असिद्ध रूपों का प्रचलन कम हो गया। अपवाद नियमों की संख्या कम हो गई। लौकिक संस्कृत की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

(i) शब्द रूपों और धातु रूपों में वैकल्पिक रूपों की न्यूनता हो गयी।

(ii) सन्धि नियमों की अनिवार्यता हो गयी।

(iii) लोट् लकार का अभाव हो गया।

(iv) भाषा में स्वरों का प्रयोग समाप्त हो गया।

(v) 'कृत' प्रत्ययों आदि में अनेक प्रत्ययों के स्थान पर एक प्रत्यय होने लगे। तुमर्थक 15 प्रत्ययों के स्थान पर केवल 'तुम्' प्रत्यय है।

(vi) शब्द कोष में पर्याप्त अन्तर हो गया। प्राचीन, ईम्, सीम् जैसे निपात लुप्त हो गए। वेदों में अत्यन्त प्रचलित अवस्यु, विचर्षणि, वीति, ऋक्वन, उक्थ्य जैसे शब्द समाप्त हो गए। इसी प्रकार के अन्य शब्द हैं – दर्शत (दर्शनीय), दृशीक (सुन्दर), मूर (मूढ़) अमूर (विद्वान्) अक्तु (रावि), अमीवा (रोग), रपस (चोट) ऋदुदर (कृपालु)।

(vii) वैदिक शब्दों के अर्थों में भी अन्तर हो गया। जैसे –

पत्	–	वैदिक संस्कृत – उड़ना	संस्कृत – गिरना
सह	–	वैदिक संस्कृत – जीतना	संस्कृत – सहना
न	–	वैदिक संस्कृत – नहीं, तुस	संस्कृत – नहीं
असुर	–	वैदिक संस्कृत – शक्तिशाली	संस्कृत – दैत्य
अराति	–	वैदिक संस्कृत – कृपण	संस्कृत – शत्रु
वध	–	वैदिक संस्कृत – घातक शस्त्र	संस्कृत – हत्या
क्षिति	–	वैदिक संस्कृत – गृहं	संस्कृत – पृथ्वी

(viii) स्वरों में लृ का प्रयोग समाप्त प्राय हो गया। व्यंजनों में ळ और ळह नहीं रहे। जिह्वामूलीय और उपध्मानीय का प्रयोग समाप्त हो गया।

(ix) संगीतात्मक स्वर के स्थान पर बलात्मक स्वरों का प्रायेग होने लगा।

(x) उपसर्गों का स्वतन्त्र प्रयोग नहीं रहा।

❖❖❖